नजीर अकबराबादी



भारत ज्ञान विज्ञान समिति

नव जनवाचन आंदोलन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने
'सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट' के सहयोग से किया है।
इस आंदोलन का मकसद आम जनता में
पठन-पाठन संस्कृति विकसित करना है।



नजीर अकबराबादी डॉ. ज्योत्सना रघुवंशी	**Nazeer Akbarabadi** **Dr. Jyotsna Raghuvansi**
पुस्तकमाला संपादक तापोश चक्रवर्ती	***Series Editor*** **Taposh Chakravorty**
कॉपी संपादक इरफ़ाना	***Copy Editor*** **Irfana**
रेखांकन सुनयना बी. पांडे	***Illustration*** **Sunayana B. Pande**
कवर एवं ग्राफिक्स जगमोहन	***Cover & Graphics*** **Jagmohan**
प्रथम संस्करण दिसंबर, 2007	***First Edition*** **December, 2007**
सहयोग राशि 25 रुपये	***Contribution*** **Rs. 25**
मुद्रण सन साइन ऑफसेट नई दिल्ली- 110018	***Printing*** **Sun Shine Offset** **New Delhi- 110018**

Publication and Distribution

© Bharat Gyan Vigyan Samiti

Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket , New Delhi - 110 017

Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773

Email : bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com

website: www. bgvs.org

BGVS DECEMBER 2007 2K 2500 NJVA 0151/2007

भूमिका

आज सांप्रदायिकता की आग ने मानवीय विवेक की आंखों पर पर्दा डाल दिया है। वहशत स्वछंद घूम रही है; यह जुनून है, जो सब कुछ ध्वस्त कर देना चाहता है। उस जुनून को भड़काने का गुनहगार कौन है, इस पर बहस जारी है। विवेक की आंखें जब साफ होंगी तो गुनहगार अवश्य कटघरे में होंगे, फिलहाल जरुरत इस बात की है कि मिलन के वे सेतु बचाए जाएं, जो लंबे समय से हमारी साझी संस्कृति की पहचान के प्रतीक रहे हैं। ये सेतु तब बने थे, जब बढ़ती दूरियों को पाटने के लिए हिंदू और मुसलमान समान रुप से आगे बढ़े थे, हिंदू संतों और मुस्लिम फकीरों ने ऐसा आंदोलन छेड़ा था, जिससे सभी वर्गों ने एक मंच पर आकर सांस्कृतिक मेल-मिलाप के गीत गए थे-

जिन मैल दिल से मिर्जा माधो का धो दिया।
हिंदू तुरक का भेद दिलो जां से खो दिया।
आशिक तो कलंदर है न हिंदू न मुसलमां।

प्रेम के लिए हिंदू मुसलमान का भेद कोई मानी नहीं रखता है। लाखों लोगों के दिलों में धड़कने वाले नजीर अकबराबादी (1735-1830) की रचनाएं दो सौ वर्षों से लोकजीवन का हिस्सा बनी हुई है। नजीर जब तक ब्रज के लोक जीवन में घुले-मिले रहे, जन-जन के कंठों से फूटते रहे, मेले-तमाशों में गाए जाते रहे, तब तक इनकी रचनाओं से छलकता अमृत, उन्माद की चिंगारी को जन्म लेते ही ठंडा करता रहा। नजीर के काव्य के तिलस्मी असर की वजह से इन्हें जनकवि की ख्याति हासिल हुई। मिट्टी की सोंधी महक वाली इनकी रचनाएं आज भी जादुई प्रभाव रखती है। नजीर अकबराबादी की प्रासंगिकता आज शिद्दत से महसूस की जा रही है।

नजीर बहुत अच्छे इंसान थे, वह जन को संबोधित रचनाएं लिखते थे, शब्दों के जादूगर और वाणी के बादशाह थे। उनकी भाषा भावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति देने में समर्थ है। भाव जागे और भाषा ने सफलता के साथ शब्द-चित्र उतारने शुरु कर दिए-ऐसी उक्तियां नजीर अकबराबादी के संबंध में सदा कही व लिखी जाती रही है।

नजीर अकबराबादी अपने जीवनकाल में ही मिथक के नायकों की तरह प्रसिद्ध हो गए थे। इनकी काव्य प्रतिभा को साहित्येतिहास में बाद में स्वीकृति मिली पर उसके बहुत पहले ही इनकी कविताओं का जादुई संगीत आगरा के बाजारों, राहों और गली-कूचों में गूंजता रहा-

सब ठाठ पड़ रहा जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा।

X X X X X X X

क्या खूब नर्मो नाजुक इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर इस्कंदरे की ककड़ी।

नजीर की रचनाएं लोकगीत व ईशवंदना की तरह मंदिरों, घरों व उत्सवों में गाई जाती रही-

तेरी सरन गही है, कर तू निहाल भैरों।
ऐ पर्तपाल देवत, मदमस्त काल भैरों।
यारो सुनो, यह दधि के लुटैया का बालपन।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन सरुप निरत करैया का बालपन।
बन-बन के ग्वाल गौएं चरैया का बालपन।
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।

जन सामान्य के बीच नजीर की कविता की पैठ और वृहद जन-स्वीकृति ने आलोचकों को इस सीमा तक बाध्य किया कि उन्हें नजीर को उर्दू मिश्रित खड़ी बोली का अन्यतम और विशिष्ट कवि घोषित करना पड़ा।

नजीर अकबराबादी संभवत: ऐसे अकेले कवि रहे, जिन्होंने युगीन

चुनौतियों का जवाब एक अलग तरीके से दिया और अपनी आत्मिक शक्ति के बल पर टिके रहे। नजीर ने अपने काव्य में एक नए रास्ते को रोशन किया, जिसका हमराही आम आदमी था और मंजिल आम इंसान–

गालियां, मार खाते हैं कौड़ी के वास्ते।
शर्मो हया उठाते हैं कौड़ी के वास्ते।
सौ मुल्क छान आते हैं कौड़ी के वास्ते।
मस्जिद को दम में ढाते हैं कौड़ी के वास्ते।
कौड़ी के सब जहान में नक्शों नगीन है।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन है।

नजीर अकबराबादी ऐसे अकेले कवि हैं, जिन्होंने लोगों के बारे में, लोगों के लिए गाया। इसके लिए इन्होंने संप्रदाय–सीमित तत्वों या किसी रहस्यवादिता का सहारा नहीं लिया। इनके बारे में जानना प्रकारान्तर से उनके युग–जीवन को जानना व महसूस करना है। इनकी मेहनत, हर्षोल्लास और छोटी–छोटी उपलब्धियों को जीवंत रुप में देखना है।

नजीर को आगरा व संपूर्ण ब्रज क्षेत्र के उत्सव–त्यौहार (होली, दिवाली, बसंत, शब्बरात, ईद), मेले (बल्देव, तैराकी, कंस आदि का मेला), खेल (कबूतरबाजी, पंतगबाजी, मदारी की कलाबाजी, रीछ का नाच) बहुत पसंद थे। इनसे संबंधित कविताओं में जीवन की वास्तविक सच्चाइयों और सुख का अनुभव पाठक को आह्लादित कर देता है। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में आम आदमी के लिए ये कविताएं संजीवनी शक्ति का काम करती थीं।

आज भी राजनीतिज्ञों के छल–छद्म के चलते भाषा–संस्कृति, प्रेम और सद्भाव समाज से दूर है। अब हिंदी–उर्दू और हिंदू–मुसलमान का बंटवारा ही नहीं हो रहा है वरन् बड़ी दिलेरी के साथ सुनियोजित सांप्रदायिक दंगों के संचालन के बाद राज्य सरकार के संरक्षण में गौरव रथ–यात्रा निकलती हैं। आत्ममुग्धा नायिका की भांति शीर्षस्थ नेता

वर्तमान स्थितियों से संतुष्ट और सहज दीखते हैं। आज भी आमआदमी की पीड़ा को सुनने, समझने व दूर करने वाला कोई नहीं है।

नजीर अकबराबादी जैसे जनकवि की कविताएं ऐसे में बहुतप्रसंगिक लगती हैं–

झगड़ा न करे मिल्लतो मजहब का कोई यां।
जिस राह में आज पड़े खुश रहे हर आं।
जुन्नार गले या कि बगल बीच कुरआं।
आशिक तो कलंदर है न हिंदू न मुसलमां।।

डॉ. ज्योत्स्ना रघुवंशी
रीडर,
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा

नजीर-व्यक्तित्व और जीवन

मियां नजीर का असली नाम मुहम्मद और उपनाम 'नजीर' था। अपने उपनाम 'नजीर' में निवास स्थान संबंधी 'अकबराबादी' शब्द जोड़कर वे 'नजीर अकबराबादी' कहलाए। उनके पिता का नाम मुहम्मद फारुख था। पिता पटना के किसी रईस के यहां काम करते थे। उनका खानदानी पेशा सिपहगीरी था। नजीर की ननिहाल आगरा में थी। उनकी मां आगरे के किलेदार नवाब सुल्तान खां की बेटी थीं। मियां नजीर के जन्म के संबंध में प्रोफेसर शहबाज ने लिखा है-

कहा जाता है कि अपनी बारह संतानों के अकाल काल-कवलित हो जाने के कारण नजीर के माता-पिता संतान के अभाव में दुखी रहते थे। एक बार एक फकीर का आगमन हुआ, सुनकर मुहम्मद फारुक उनके पास गए और फकीर के दिए हुए पांच फूल साथ लेकर घर आए। फकीर ने आदेश दिया था कि फूलों को सूंघकर नदी में डाल देना और जो कैफियत हो मुझे आकर बताना। विश्वास और आस्था के साथ मुहम्मद फारुक ने यमुना तट पर जाकर एक-एक करके फूलों को यमुना में फेंका और उनमें से एक फूल पानी पर तैरता रहा, शेष सब पानी में डूब गए। यह बात उन्होंने फकीर को सुनाई। फकीर ने प्रसन्न होकर कहा, "जा खुश हो। तेरा एक लड़का जिंदा रहेगा और तेरे नाम को रोशन करेगा।" उनकी पत्नी गर्भवती हुई और समय से बच्चे का जन्म हुआ। कई संतानों की मृत्यु के अनंतर नजीर का जन्म होने के कारण माता-पिता और नानी को अत्यंत प्रसन्नता हुई। समयानुसार उनके सभी संस्कार किए गए। बुरी नजर से बचाने के लिए नाक, कान छेदकर उनका रुप लड़कियों जैसा बना दिया गया। नजीर के शारीरिक

गठन के संबंध में फरहतुल्ला बेग का कथन है कि नजीर का रंग गंदुम-गूं, कद दरमियाना, पेशानी ऊंची और चौड़ी, आंखें चमकदार और पैनी, नाक बुलंद थी। दाढ़ी खशखशी अैर मूंछें बड़ी रखते थे। खिड़कीदार पगड़ी, गाढ़े का अंगरखा, सीधा पर्दा, नीची चोली, उसके नीचे कुर्ता, एक बरका पायजामा, धीतली जूती, हाथ में शानदार छड़ी, उंगलियों में फीरोजी और अकीक की अंगूठियां। (दीवाने नजीर अकबराबादी, पृ.6)

जन्म तिथि

नजीर के जन्मकाल के सबंध में निश्चित प्रमाण के न होते हुए भी अधिकतर विद्वानों ने नजीर का जन्म 1735 ही माना है।

जन्मस्थान

विभिन्न विद्वानों के मतों पर ध्यान देने के बाद नजीर का जन्म स्थान देहली मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रोफेसर शहबाज द्वारा प्रस्तुत जानकारी का संबंध मियां नजीर की नवासी से होने के कारण अधिक प्रमाणिक है।

नजीर का आगरे के प्रति प्रेम अैर आगरेवालों के नजीर के प्रति प्रेम के कारण उनका जन्मस्थान आगरा को श्रेय दिलाना आगरा को महत्व प्रदान करने का प्रयास ही कहा जाएगा। सच तो यह है कि नजीर देहली में जन्म लेकर आगरे में बस गए, जिससे आगरा और नजीर दोनों ही धन्य हो गए-

आशिक कहो असीर कहो आगरे का है।
मुल्ला कहो, दबीर कहो, आगरे का है।
मुफ्लिस कहो, फकीर कहो, आगरे का है
शायर कहो, नजीर कहो, आगरे का है।

शिक्षा-दीक्षा

परिवार की एकमात्र जीवित और अत्यंत प्रिय संतान होने के बाद भी स्थानीय पाठशाला की पढ़ाई में इनकी अच्छी प्रगति थी। चार वर्ष की उम्र में इन्हें पढ़ाने के लिए मौलवी नियुक्त किया गया। नजीर ने पवित्र कुरान का पाठ किया और उसके बाद सादी के "करीमा" मा मकीमा, खुसरों के 'खलिकबारी' (उर्दू, फारसी शब्दकोश) और

महदूदनामा, अतैनामा से फारसी की थोड़ी-बहुत पढ़ाई की और 'आमदनामा' व्याकरण भी देखा।

नजीर आठ भाषाएं संस्कृत अरबी, उर्दु, पंजाबी, मारवाड़ी, पूर्वी और हिंदी जानते थे। प्रोफेसर शहबाज ने इस संबंध में लिखा है-

नजीर ने अपनी तवज्जो को मुख्तलिफ जबानों को हासिल करने में मसरुफ किया। वह थोड़े ही वक्त में पंजाबी खासी तरह बोलने लगे। ब्रजभाषा पर गोपियों की-सी महारत हासिल की। पूर्वियों का लहजा सीख लिया। मारवाड़ियों की परिभाषाएं याद कीं। मलिक मुहम्मद जायसी या तुलसीदास की जो जबान है, उसमें कमाल पैदा किया, इस प्रकार वह कई भाषाओं के जानकार बन गए।

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि इनकी रुचि, दर्शन और चित्रकारी में थी।

उन दिनों की शिक्षा बहुआयामी होती थी। उदाहरणार्थ, शिष्य को केवल परंपरा और साहित्य का ज्ञान ही नहीं होना चाहिए बल्कि तलवार चलाने, कुश्ती लड़ने, लाठी चलाने, भाले-गोले फेंकने का अभ्यास होना चाहिए। मियां नजीर के जीवन का एक बड़ा भाग खेलकूद में बीता। पच्चीसा, गंजफा, चौसर, शतरंज के अतिरिक्त दीवाली पर जुआ भी खेला (नजीर तो बना है जुआरिया दिवाली का); पतंगबाजी की। कुश्ती लड़ी (कुश्ती में हमने कितनी मुद्दत बदन को तोड़ा); गिलहरी, रीछ और अजदहे का बच्चा पाला (हम बेचते हैं यारों! अजदहे का बच्चा) तैराकी में दिलचस्पी ली (इस आगरे में क्या-क्या ऐ! यार पैरते है); मेले-ठेले, तीज त्यौहार का आनंद उठाया। शेख सलीम चिश्ती के उर्स के साथ ही बलदेव जी का मेला भी देखा। शब्बरात, ईद के साथ ही रक्षाबंधन और होली भी मनाई। वास्तव में नजीर ने पूरी तरह जीवन को जिया। साथ ही यही एक उत्तम पाथेय था, जिसके सहारे चल कर भयावह वर्तमान दुखों को कुछ समय के लिए भुलाया जा सकता था।

विवाह तथा परिवार

मियां नजीर का विवाह आगरा के अहदी अब्दुल रहमान खां

चुगताई की नवासी मुहम्मद रहमान खां की बेटी तहव्वरुन्निसा बेगम के साथ हुआ, जो ताजगंज मुहल्ले में मलको गली में रहते थे। नजीर अकबराबादी भी बाद में नूरी दरवाजे वाला मकान छोड़कर ताजगंज में जा बसे। वहीं अपना मकान बनवा लिया। इनकी दो संतानें एक पुत्र गुलजार अली 'असीर' तथा पुत्री इमामी बेगम हुई इमामी बेगम की बेटी विलायती बेगम से ही जानकारी प्राप्त कर प्रोफेसर शहबाज ने नजीर अकबराबादी के संबंध में महवपूर्ण लेखन-कार्य किया।

जीवन-यापन

जीवन-यापन के लिए नजीर ने कुछ दिन मथुरा में लड़के पढ़ाने की नौकरी की। वहां मन नहीं लगा तो आगरा आकर भाऊ किलेदार के उस्ताद बन गए। इसके बाद कुछ दिनों मुहम्मद अली खां के बच्चों को पढ़ाया पर यहां भी अधिक दिन नहीं टिके। यहां से नौकरी छोड़कर आगरा के माईथान मुहल्ले में राजा विलास राय के बच्चों को सत्रह रुपए माहवार पर पढ़ाने लगे। एक समय का खाना भी वहीं खाते थे। ताजगंज से आने-जाने के लिए घोड़ी का प्रयोग करते थे।

मियां नजीर का मुख्य कार्य बच्चों को शिक्षा देना ओर शायरी करना था। उनका अधिकतर समय बच्चों को शिक्षा देने में व्यतीत होता था। यही उनका जीविका का साधन था। वे आगरा के प्रसिद्ध शिक्षकों में से थे। उन्होंने राजा विलासराय के लड़कों हरबख्शराय, गुरुबख्शराय, मूलचंदराय, मनसुखराय, बंशीधर तथा शंकरदास को पढ़ाया। इनके अतिरिक्त अन्य बच्चों को भी नजीर ने पढ़ाया था।

शायरी के क्षेत्र में उनसे प्रेरणा ग्रहण करने वाले शिष्यों की संख्या वैसे तो बहुत थी लेकिन प्रो. शहबाज ने उनमें मुख्य निम्नलिखित नाम गिनवाए है-

1. खलीफा गुलजार अली 'असीर' (पुत्र)
2. हकीम मीर कुतुबद्दीन बातिन
3. मिर्जा असदुल्लाह 'गालिब'
4. महाराज बलवंत सिंह

5. लाला बुद्धसैन साफी
6. शेख मदारी 'जमीर'
7. हकीम मीर मुहम्मद 'जाहिर'
8. खेश नबीबक्श 'आशिक'
9. मुंशी हुसैन अली खां 'महव'
10. बेदान बख्श 'लहर'
11. शेख हुसैन बख्श 'बख्शी'

इनमें से मिर्जा गालिब के शिष्यत्व के संबंध में विचारकों के विभिन्न विचार हैं। मिर्जा गालिब काल क्रमानुसार नजीर अकबराबादी (सन् 1735-1830 ई.) अैर मिर्जा गालिब (सन् 1797-1869) के कवि हैं। इस प्रकार नजीर का बुढ़ापा, गालिब का बचपन आगरे में बीता। प्रोफेसर शहबाज का कथन है- उस समय आगरा मे खलीफा मुअज्जम और मियां नजीर दो ही मुमताज मुल्लाओं में थे। गालिब को इन्हीं दो की तरफ जाना पड़ा।

नजीर अपनी लेखनी के बल पर हिंदू व मुसलमानों में समान रुप से लोकप्रिय थे। राह चलते लोग नजीर को रोककर कविता सुनाने का आग्रह करते और नजीर सहर्ष कविता सुनाने को राजी हो जाते। धार्मिक भेदभाव नजीर को छू तक नहीं गया था। 'स्तुति भैरों जी' आज भी ताजगंज स्थित शमशान घाट पर भैरों जी के मंदिर में पूर्ण श्रद्धा से गायी जाती है।

कवि नजीर सरल स्वभाव के थे। जब वे घर से निकलते तो अक्सर लोग रास्ता रोककर खड़ हो जाते। घोड़ी ऐसी सध गई थी कि जहां लोगों ने सलाम किया, वह खड़ी हो जाती। सब कहते, मियां पहले कविता सुनावें, तब आगे जाने देंगे। नजीर वहीं बैठकर कविता बनाते और घंटों सुनाते; फेरी लगाकर माल बेचने वाले उनसे कविताएं लिखवा ले जाते और गली कूचों में गा-गाकर अपना माल बेचा करते। ककड़ी बेचने वाला पीछे पड़ा तो 'आगरे की ककड़ी' नामक रचना की।

भीख मांगने वाले जोगी ने निवेदन किया तो 'कन्हैया का बालपन'

कविता कही और वह कड़ा बजा-बजाकर उसे गा-गाकर भीख मांगने लगा-

ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूं मैं किशन कन्हैया का बालपन।

मियां नजीर स्वाभिमान और स्वतंत्र प्रकृति के कवि थे। उन्होंने कभी किसी राजा, नवाब या रईस की प्रशंसा में एक पंक्ति भी नहीं लिखी। उन्होंने जो कुछ लिखा, जनता के लिए लिखा। वे न तो लोभी थे और न उन्हें किसी की खुशामद करना ही पसंद था। कहा जाता है, लखनऊ के नवाब सआदत अली खां कवि और कलाकारों का बहुत सम्मान करते थे। उन्हें नजीर की गरीबी का पता चला तो उन्हें अपने यहां बुलाने के लिए आदमी भेजे। भेंटस्वरुप कुछ धन भी भेजा। नजीर ने उस समय तो वे रुपए रख लिए और लखनऊ जाने का वायदा भी कर लिया। परंतु उन्हें उन रुपयों से ऐसी ग्लानि हुई कि रात भर नींद नहीं आई। सुबह उठकर उन्होंने वे रुपये वापस कर दिए और कहा, बादशाह से मेरा सलाम कहना, मेरी तरफ से माफी मांगना, और अर्ज करना कि नजीर फकीर तो अपनी झोपड़ी में ही खुश है शाही महलों में रहना उसकी तकदीर में नहीं।

प्रोफेसर शहबाज ने लिखा है कि उनके पिता मुहम्मद फारूक अजीमाबाद के किन्हीं नवाब के यहां नौकर थे। उनके देहांत के बाद उनका माल-सामान लेने के लिए उनको बुलाया गया, लेकिन यह नहीं गए। उनको लिख दिया कि कृपया आप माल खैरात कर दीजिए।

ब्रज क्षेत्र में नजीर की कविता की बहुत धूम थी। उनकी प्रशंसा से प्रभावित होकर भरतपुर के राजा ने इन्हें अपने यहां बुलाया लेकिन वहां भी नहीं गए। मियां नजीर को आगरा इतना पसंद था कि उन्होंने आगरे की हद से बाहर जाने की इच्छा नहीं की। तमाम आमंत्रणों और प्रलोभनों के बावजूद कविता को उन्होंने व्यवसाय में परिवर्तित नहीं होने दिया। एक बार नवाब वाजिद अली शाह के दूत के लगातार आग्रह व दबाव पर वह लखनऊ जाने के लिए तैयार हो गए थे। नजीर अपनी घोड़ी पर सवार होकर निकले, नजीर तब तक आगे बढ़ते रहे,

जब तक खूबसूरत ताज नजरों से ओझल नहीं हुआ था, जिसकी छाया में नजीर ने उम्र बसर की थी। कुछ दूर चलने के बाद एक ऐसी स्थिति आई, तब ताज नजर से ओझल होने लगा। इस दुख ने कवि को स्तब्ध कर दिया और उसके बाद वह फिर वापस लौट पड़े... ताज और आगरे की ओर, इस निश्चय के साथ कि निरंतर ताज को देखते हुए वह आगरे में आजीवन शिक्षक की नौकरी कर संतुष्ट रहेंगे बनिस्बत लखनऊ के समृद्ध दरबार में विलासपूर्ण जीवन बिताने के।

नजीर के धर्म में बारे में उनकी स्थिति विवादास्पद बनी रही। निस्संदेह, इनके पिता सुन्नी मुसलमान थे, लेकिन वे खुद शिया मुसलमान थे। धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया के बारे में कोई निश्चित संकेत-सूत्र उपलब्ध नहीं है, ऐसा संभवतः उनकी मां के विशिष्ट प्रभाव के चलते ही हुआ होगा, जो स्वयं शिया थीं। नजीर इतने उदारवादी थे कि अंध परंपराओं और धार्मिक रुढ़ियों को उन्होंने जीवन के क्षेत्र में कतई नहीं आने दिया। विश्वास से शिया होने के बावजूद सूफियों के रहस्यवाद की ओर उनका बहुत रुझान था। वे दिल्ली के मशहूर सूफी मौलाना फखरुद्दीन के अनन्य प्रशंसक थे।

नजीर को सौ वर्ष की लंबी जिंदगी मिली। लकवा मार जाने के तीन वर्ष बाद इन्होंने अपने आंगन के नीम और बेर के पेड़ों की छाया में अंतिम विराम लिया, जिनकी छांव में आजीवन खूबसूरत कविताएं लिखते रहे थे, जहां शार्गिद युवा कवियों से बातचीत होती थी और अपने शिष्यों को शिक्षा दी थीं इन पेड़ों की छाया नजीर के पूरे उत्कर्ष की साक्षी रही। इनकी मृत्यु के बाद शिया-सुन्नियों के अलावा हिंदुओं ने भी अपना हक जताया। घर में पेड़ों की छाया में मियां नजीर को दफनाकर मजार बना दी गई औ हिंदू शिष्यों और प्रशंसकों ने इनके कफन को जलाकर श्रद्धांजलि अर्पित की।

मृत्यु तिथि

नजीर की इन काव्य पंक्तियों को पढ़कर नजीर की आयु का अनुमान स्वयं हो जाता है-

ऐ यार सौ बरस की हुई अपनी उम्र आकर।
और झुर्रियां पड़ीं हैं सारे बदन के ऊपर।।

नब्बे-पचानवे के लगभग आयु का पहुंचा हुआ व्यक्ति स्वयं को लगभग सौ वर्ष का कह सकता है। सन् 1243 हिजरी में उन पर फालिज गिरा और तीन साल के बाद 26 सफर 1246 हिजरी तदनुसार 26 अगस्त सन् 1930 को उनका देहांत हुआ।

इस प्रकार एक महान् जीवन का अंत हुआ। महान् इसलिए कि उसका एक-एक क्षणपूरी संतुष्टि और खूबसूरती से जिया गया था। विधवा पत्नी, एक बेटा तथा बेटी के अलावा, वे अपनी पीछे सैकड़ों शिष्यों का संसार छोड़ गए और संसार के लिए अपना अमूल्य शाश्वत काव्य-

आखिर के तई हंस अकेला ही सिधारा।

ब्रज-क्षेत्र और आगरावासी अब भी अपने प्रिय कवि मियां नजीर अकबराबादी का स्मरण करते हैं। बसंत-पंचमी के शुभ अवसर पर शहर के प्रबुद्ध नागरिक, कलाकार, अधिकारी, राजनेता, समाजसेवी, कवि, शायर आदि ताजगंज की मलको गली में स्थित नजीर की मजार के पास आयोजित नजीर मेले में एकत्र होते हैं और बड़े श्रद्धा भाव से उनकी नज्मों को गाते व प्रस्तुत करते हैं।

पिछले 70 वर्षों से आयोजित नजीर मेले के बारे में लतीफउद्दीन साहब और डॉ. गुरुमुखराम टंडन ने अपने अनुभव सुनाते हुए बताया था- "मुझे याद है कि बसंत के दिन आगरे के मोहल्ले मोती कटरा, गोकुलपुरा, छत्ता वगैरह में नजीर के चाहने वाले टोलियां बना कर पीली टोपियां पहनकर नजीर की नज्में पढ़ते हुए जाते थे; इनमें अकसरियत हिंदू हजरात की होती थी। दिन भर नजीर की शायरी को खास अंदाज से पढ़ने के मुकाबले होते थे। बच्चे पीले कुर्ते, औरतें पीले दुपट्टे, धोतियां पहनती थीं। एक खास बात और आपने बताई कि नजीर का ज्यादतर कलाम कम पढ़े-खिले या अनपढ़ लोगों को जुबानी याद था-लोकगीतों की तरह।"

नजीर की रचनाएं

कविवर नजीर अकबराबादी के जीवन में कोई काव्य संग्रह नहीं छप सका। इसका सबसे बड़ा कारण था कि नजीर राह चलते हुए 'नज्में' कहा करते थे, उनका कोई संग्रह नहीं करते थे। उनका सारा काव्य स्फुट रुप में मिलता है, उनकी कविताओं के प्रशंसकों ने उनकी रचनाओं को संजोकर रखा।

यह तो सब स्वीकार करते है कि नजीर ने बहुत लिखा, लेकिन उनकी रचनाओं की निश्चित संख्या कोई नहीं बता सका। नजीर द्वारा रचनाओं को शास्त्रीय नियम, साहित्यिक सौंदर्य और राजसी साज-संवार से दूर रखने के कारण बहुत समय तक साहित्यकारों ने नजीर के काव्य को साधारण और घटिया समझकर उपेक्षित रखा और कोई व्यवस्थित संग्रह तैयार नहीं हो सका। कवि नजीर ने भी अपनी रचनाओं को जमा नहीं किया। उनके शिष्यों, मित्राों और प्रशंसकों के पास उनकी रचनाएं पड़ी रहीं।

नजीर के उर्दू के दो और फारसी के तीन दीवानों का संग्रह भी मिलता है। नजीर ने फारसी भाषा में गद्य भी लिखा। फारसी की ही नौ कृतियों की खोज हुई। उन रचनाओं की सातों पांडुलिपियों को दर्ज भी कराया गया, जो क्रमश इस प्रकार हैं- नज्में, गजीन, कदे मत्तीन, फहमिए करीन, बज्मे ऐश, शनाई-ए-जेबा, हुस्न बाजार और तर्जे तकरीर। (मोहम्मद हसन, नजीर अकबराबादी, पृ.25) ये सारी पांडुलिपियां दिल्ली विश्वविद्यालय के पांडुलिपि विभाग में उपलब्ध है।

उर्दू-हिंदी के अनेक विद्वानों ने उनकी रचनाओं के छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित कराए। साथ ही जीवन परिचय भी प्रस्तुत किया। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार है।

कुल्लियाते नजीर	:	मुहम्मद अब्दुल गफूर 'शहबाज'
रुहे नजीर	:	मखमूर अकबराबादी
मुंतखाबते नजीर	:	मखमूर अकबराबादी
चमने बेनजीर	:	मखमूर अकबराबादी
दीवाने नजीर अकबराबादी	:	मिर्जा फरहतुल्ला बेग
इंतखाब कुल्लियाते नजीर	:	सैयाद जलालुद्दीन अहमद जाफरी
गुलजारे नजीर	:	सलीम जाफर
कुल्लियाते नजीर अकबराबादी	:	मौलाना अब्दुलबारी 'आसी'

नजीर की नज्में

दीवाने नजीर	:	मुहम्मद नजर खां
इंतखाबे नजीर	:	रशीद हसन खां
कुल्लियाते नजीर	:	अजहर राही
इंतखाबे गजलियात नजीर	:	डॉ. मलिकजादा मंजूर अहमद अकबराबादी

नजीर अकबराबादी के हिंदी काव्य संग्रह

अशआर-ए-मियां नजीर	:	लल्लूराम, कलकत्ता, 1812
नजीर के शेर	:	ज्ञान रत्नाकर प्रेस कलकत्ता, 1868
दीवान-ए-नजीर	:	इकबाल, शहंशाही प्रेस, आगरा, 1897
अशआर-ए-नजीर	:	राजनारायाण अग्रवाल, हाफिज शमशुद्दीन
नजीर बानी	:	फिराक गोरखपुरी
दीवान-ए-नजीर (हिंदी)	:	मुहम्मद नजर खां
महाकवि बे नजीर	:	रघुराज किशोर वतन हरिदास एडं कंपनी, मथुरा
नजीर काव्य संग्रह	:	पंडित उदय शंकर शास्त्री
कविवर नजीर	:	डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन
नजर अकबराबादी और	:	सरस्वती सरन 'केफ' उनकी शायरी
महाकवि नजीर अकबराबादी	:	रघुराज किशोर वतन
दीवान-ए-नजीर	:	मुहम्मदी प्रेस, धनकोट, आगरा
कवि श्री नजीर	:	अमीर मुहम्मद खां
नजीर अकबराबादी	:	मोहम्मद हसन

नजीर ग्रंथावली : नजीर मुहम्मद
नजीर शायरी और जिंदगी : शफीका फरहत
नजीर और उनकी विचारधारा: अब्दुल अलीम

इसके अतिरिक्त छोटी-छोटी पुस्तकों के रुप में मियां नजीर की रचनाएं बालपन कन्हैया का, नागलीला, चूहेनामा, महादेव जी का ब्याह, आटा-दालनामा, होली के रंग नजीर के संग प्रकाशित हुई हैं। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित भजन संग्रह में नजीर के कुछ भजन संग्रहीत है।

नजीर की काव्यगत विशिष्टता

नजीर अकबराबादी अपने जमाने में और उसके बहुत दिनों बाद भी जनसाधारण में तो प्रिय रहे किंतु उन्नीसवीं शताब्दी में साहित्यिक मान्यता प्राप्त न कर सके। तत्कालीन समालोचकों ने तो उनकी पूरी उपेक्षा कर दी। दरअसल, उस दौर में हिंदी में रीतिकालीन कविता हावी थी तो उर्दू में दरबारी शायरी। नजीर की चेतना अपने समय से बहुत आगे बढ़ी हुई थी, जिसे उनके समकालीनों ने बहुत पीछे की चीज समझा और उसको कोई महत्त्व नहीं दिया। नजीर के समय का भारत सामंतवादी भारत था, जिसमें या तो धर्म और दर्शन के आधार पर साहित्य-सृजन किया जाता था या फिर सौंदर्य बोध का ऐसा आधार ढूंढा जाता था, जो सामंत वर्ग के जीवन में मिल सके।

इसके विरुद्ध नजीर बिलकुल जनसाधारण के कवि थे, जो सारे जीवन को उसी की दृष्टि से देखा करते थे। उन्होंने जीवन की प्रत्येक अनुभूति का चित्रण किया है किंतु उनकी चेतना जनसाधारण के जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही देखी जा सकती है। वे प्रेम की बातें करेंगे तो भी उसमें साधारण जन का तूफानी प्रेम होगा, भक्ति की बातें करेंगे तो भी उस साधारण जन की भावना का चित्रण करेंगे, जो कृष्ण और मुहम्मद दोनों के आगे नतमस्तक हो जाता है। महलों और दरबारों की सजावट की चकाचौंध और शाही सवारियों या शिकार के वर्णन के बजाय उनके यहां तैराकी बल्देव जी का मेला, आगरे की ककड़ी, ताजमहल और रीछ का तमाशा दिखाई देगा। इसके अलावा वे कुछ ऐसी भी बातें कह जाएंगे, जो

सामंती युग के सभ्य समाज में वर्जित थीं-जैसे गरीबी का रोना, मौत का डर और रोटियों का महत्व। स्पष्ट है कि साधारण किंतु संपूर्ण जीवन के ऐसे यथार्थवादी कवि को संभालना उस युग की सामंती दरबारी चेतना के वश की बात नहीं थी। इसलिए तत्कालीन आलोचकों ने बाजारुपन के नाम पर उनकी लोकप्रियता से छुट्टी पा ली।

विदेशी कवियों बर्न्स और विलों की तरह नजीर एक प्रतिभावान आवारा थे। (मुहम्मद हसन, नजीर अकबराबादी, पृ. 36) आवारा की कोटि में केवल असामाजिक तत्व ही नहीं आते बल्कि समय की मान्य सीमाओं का अतिक्रमण करने वाले सर्जक मनीषा को भी इसी कोटि में धकेल दिया जाता है।

नजीर ने जीवन और जगत के कुछ पक्षों को जान-बूझकर अस्वीकार किया लेकिन इसमें इन पक्षों से उनकी अज्ञानता नहीं थी, बल्कि सायास प्रयत्न था। वे उस समुदाय के लोगों को अच्छी तरह जानते थे और उसके प्रबल विरोधी भी थे। एक आम आदमी की नजर से आगरा की समृद्धि, खुशहाली ओर जवानी को, इसके आकर्षण, चमक और मस्ती को, मजाक, छेड़छाड़ और नंगेपन को बड़ी खूबसूरती पर आजादी के साथ नजीर ने अपनी कविता में अभिव्यत्ति दी। फूहड़पन को लिखने का अपराध-बोध इन्हें कभी नहीं हुआ। इनके काव्य में स्वच्छंद अभिव्यत्ति की जो पारदर्शिता है, वह समाज से छुपा कर कोई कार्य नहीं करती। जिंदगी के प्रत्येक क्षण को व्यक्त करने में उन्हें कोई दुविधा या हिचकिचाहट नहीं होती।

उस समय महलों के भीतर क्लासिक काव्य परंपरा का निर्वाह था। महलों की चाहरदीवारी के बाहर असंख्य कामगार जनता थी, जो अभावों की जिंदगी जीते हुए भी लोक गीत, नृत्य, पहेलियां कहानियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रुप से प्रदान कर रही थी। इस प्रकार यह सजीव वृहद रचना-संसार और लोक कला-सृजन जीवित रहा।

इन दोनों में हालांकि कोई दीवार नहीं थी फिर भी अलिखित लोक साहित्य, दरबारी संस्कृति व साहित्य से मुक्त रहा और इसने अपनी रचना-पद्धति भी विकसित की।

नजीर की कविताओं में दोनों लोक कला और क्लासिक काव्य के तत्त्व मिलते हैं, पर दोनों में समकालीन (तत्कालीन) वास्तविकता का प्रयास मुखर है। भोग-विलास के साधनों से भरपूर राजमहलों की रंगीन लेकिन दमघोंटू सीमित जिंदगी को छोड़कर कवि नजीर लगातार वंचित लोगों के जीवन से संबद्ध रहे-उन्हीं को नजीर की समस्त शब्द व कलाएं समर्पित थीं।

इस प्रकार नजीर की कविताएं तत्कालीन समाज से हमारा पुनर्साक्षात्कार कराती है। नजीर की कविताएं भाव और भाषा-शिल्प की दृष्टि से इतनी सहज है कि कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि कवि नजीर आज की स्थितियों का चित्रण कर रहा है। कवि की 'खुशामद', 'मुफ्लिसी', 'रोटियां', 'आदमीनामा' आदि कविताएं आज भी उतनी ही प्रासंगिक और जनसामान्य स्थितियों के अनुरुप हैं, जितनी उस समय थी। यह विशिष्टता किसी कवि की काव्यगत विशिष्टता का महत्व सिद्ध करती है।

मनुष्यता के गायक

नजीर अकबराबादी का जीवन हो या शायरी- वह सचमुच जनकवि सिद्ध होते है; आम आदमी के प्रतिनिधि; मनुष्यता के समग्र गायक उनके सारे कृतित्व को एक नाम देना हो तो वह उनकी मुकम्मिल नज्म का शीर्षक ही, हो सकता है- 'आदमीनामा'।



बंजारा नामा

टुक हिर्से-हवा[1] को छोड़ मियां, मत देश विदेश फिरे मारा।
कज्जाक[2] अजल[3] का लूटे है, दिन रात बजाकर नक्कारा।
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतर[4] क्या गौने पल्ला सर भारा।
क्या गेहूं, चावल, मोंठ, मटर, क्या आग, धुंआ और अंगारा।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा।।

गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरी भारी है।
ऐ गाफिल, तुझ से भी चढ़ता एक और बड़ा व्यापारी है।
क्या शक्कर मिश्री कंद गरी क्या सांभर मीठा खारी है।
क्या दाख, मुनक्का सोंठ, मिरच, क्या केसर लौंग सुपारी है।
सब ठाठ पड़ रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

तू बधिया लादे बैल भरे, जो पूरब पश्चिम जावेगा।
या सूद बढ़ाकर लावेगा, या टोटा घाटा पावेगा।
कज्जाक अजल का रस्ते में जब भाला मार गिरावेगा।
धन दौलत, नाती पोता क्या, एक कुनबा काम न आवेगा।

1. लालच 2. डाकू 3. मौत 4. मौत

सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

यह खेप भरे जो जाता है, यह खेप मियां मत गिन अपनी।
अब कोई घड़ी, पर साअत मैं, यह खेप बदन की है कफनी।
क्या थाल कटोरे चांदी के, क्या पीतल की डिबिया ढकनी।
क्या बरतन सोने चांदी के, क्या मिट्टी की हंडिया चपनी।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

क्यों जी पर बोझ उठाता है, इन गौनों भारी-भारी के।
जब मौत का डेरा आन पड़ा, तब कोई नहीं गुनतारी के।
क्या साज जड़ाऊ जर जेवर, क्या गोटे थान किनारी के।
क्या घोड़े जीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल अमारी के।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

मगरुर[5] न हो तलवारों पर, मत फूल भरोसे ढालों के।
सब पट्टा तोड़ के भागेगा, मुंह देख अजल के भालों के।।
क्या डिब्बे मोती हीरों के, क्या ढेर खजाने मालों के।
क्या बुगचे ताश[6] मुशज्जर[7] के क्या तख्ते शाल दुशालों के।।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।
जब मर्ग[8] फिरा कर चाबुक को, यह बैल बदन का हांकेगा।
कोई नाज समेटेगा तेरा, कोई गौन सिये और टांकेगा।
हो ढेर अकेला जंगल में, तू खाक लहद[9] की फांकेगा।
उस जंगल में फिर आह 'नजीर' एक भुनगा आन न झांकेगा।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

---

5. घमंडी 6. एक प्रकार का छपा हुआ जरी का रेशमी कपड़ा 7. वह कपड़ा जिस पर पेड़ों का डिजाइन हो 8. मौत 9. कब्र

तन का झोंपड़ा

यह तन जो है हर एक के उतारे का झोंपड़ा।
इससे है अब भी, सबके सहारे का झोंपड़ा।
इससे है बादशाह के नजारे का झोंपड़ा।
इसमें ही है फकीर बिचारे का झोंपड़ा।।
अपना न मोल का न इजारे[10] का झोंपड़ा।
'बाबा' यह तन है दम के गुजारे का झोंपड़ा।।

इसमें ही भोले, भाले, इसी में सियाने हैं
इसमें ही होशियार, इसी में दिवाने हैं।
इसमें ही दुश्मन, इसमें ही अपने यगाने है।
शाह झोंपड़ा भी अपने, इसी में नुमाने है।
अपना न मोल का न इजारे का झोंपड़ा।
'बाबा' यह तन है दम के गुजारे का झोंपड़ा।।
इसमें ही अहले दौलतो[11] मुनइम[12] अमीर है।
इसमें ही रहते सारे जहां के फकीर है।
इसमें ही शाह और इसी में वजीर है।
इसमें ही है, सगीर[13] इसी में कबीर[14] है।
अपना न मोल का न इजारे का झोंपड़ा।
'बाबा' यह तन है दम के गुजारे का झोंपड़ा।।

इसमें ही चोर ठग है, इसी में अमोल है।
इसमें ही रोनी शक्ल, इसी में ठठोल है।
इसमें ही बाजे, और नकारे व ढोल है।
शाह झोंपड़ा भी इसमें ही करते कलोल है
अपना न मोल का न इजारे का झोंपड़ा।
'बाबा' यह तन है दम के गुजारे का झोंपड़ा।।

इस झोंपड़े में रहते है सब शाह और वजीर।

---

10. ठेका 11. दौलतमंद 12. धनाढ्य 13. छोटा 14. बड़ा महान

इसमें वकील बख्शी व मुतसद्दी[15] और अमीर।
इसमें ही सब गरीब हैं, इसमें ही सब फकीर।
शाह झोपड़ा जो कहते हैं, सच है मियां "नजीर"
अपना न मोल का न इजारे का झोंपड़ा।
'बाबा' यह तन है दम के गुजारे का झोंपड़ा।।

रोटियां

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियां।
फूली नहीं बदन में समाती है रोटियां।।
आंखें परीरुखो'[16] से लड़ाती हैं रोटियां।
सीने ऊपर भी हाथ चलाती है रोटियां।।
जितने मजे हैं सब यह दिखाती हैं रोटियां।।

रोटी से जिनका नाक तलक पेट है भरा।
करता फिर है क्या वह उछल कूद जा बजा।।
दीवार फांद कर कोई कोठा उछल गया।
ठट्ठा हंसी शराब, सनम साकी, उस सिवा।।
सौ सौ तरह की धूम मचाती हैं रोटियां।।
पूछा किसी ने यह किसी कामिल[17] फकीर से।
यह मेहरो[18] माह[19] हक ने बनाए हैं काहे के।।
वह सुनके बोला, बाबा खुदा तुझको खैर दे।
हम तो न चांद समझें, न सूरज हैं जानते।।
बाबा हमें तो यह नजर आती हैं रोटियां

रोटी जब आई पेट में सौ कन्द[20] घुल गए।
गुलजार[21] फूले आंखों में और ऐश तुल गए।।
दो तर निवाले पेट में जितने थे सब भेद खुल गए।

---

15. हिसाब किताब रखने वाला प्रबंधक 16. परियों जैसी शक्ल सूरत वाली 17. निपुण, होशियार 18. सूर्य 19. चांद 20. शक्कर 21. बाग

चौदह तबक[22] के जितने थे सब भेद खुल गए।।
यह कश्फ यह कमाल दिखाती है रोटियां।।

रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो।
मेले की सैर ख्वाहिशे बागो चमन न हो।।
भूके गरीब दिल की खुदा से लगन न हो।
सच है कहा किसी ने कि भूके भजन न हो।।
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियां।।

रोटी का अब अजल से हमारा तो है खमीर।
रुखी भी रोटी हक में हमारे है शहदो शीर।।
या पतली होवे मोटी खमीरी हो या फतीर[23]।
गेहूं, ज्वार, बाजरे की जैसी भी हो 'नजीर'।।
हमको तो सब तरह की खुश आती है रोटियां।।



22. चौदह लोक 23. गुधे हुए आटे की

आदमीनामा

दुनियां में बादशाह है सो है वह भी आदमी।
और मुफ्लिसो गदा है सो है वह भी आदमी
जरदार बेनवा है, सो है वह भी आदमी।
नैमत जो खा रहा है, सो वह भी आदमी।।
यां आदमी ही नार है और आदमी ही नूर।
यां आदमी ही पास है और आदमी ही दूर।।
कुल आदमी का हुस्नों कबह में है यां जहूर।
शैतां भी आदमी है जो करता है मक्रो जूर[24]।।
और हादी रहनुमा है सो है वह भी आदमी।।
मस्जिद भी आदमी ने बनाई है यां मियां।



24. छल कपट

बनते हैं आदमी ही इमाम और खुतबाख्यां।।
पढ़ते हैं आदमी ही कुरान और नमाज यां।
और आदमी ही उनकी चराते हैं जूतियां।
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी।।
यां आदमी पे जान को वारे है आदमी।
और आदमी से तेग को मारे है आदमी।।
पगड़ी भी आदमी को पुकारे है आदमी।
और सुन के दौड़ता सो है वह भी आदमी।
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी।
और सुन के दौड़ता है सो है वह भी आदमी।।
बैठे हैं आदमी ही दुकानें लगा-लगा।
और आदमी ही फिरते हैं रख सर पे खोमचा।।
कहता है कोई 'लो' कोई कहता है 'ला रे ला'।
किस-किस तरह बेचें हैं चीजें बना-बना।।
और मोल ले रहा है सो है वह भी आदमी।।
यां आदमी ही लालो जवाहर हैं बे बहा।
और आदमी ही खाक से बदतर है हो गया।।
काला भी आदमी है कि उल्टा है जूं तवा।
गोरा भी आदमी है कि टुकड़ा सा चांद का।।
बदशक्ल, बदनुमा है सो है वह भी आदमी।।
मरने पै आदमी ही, कफन करते हैं तैयार।
नहला धुला उठाते हैं कंधे पै कर सवार
कलमा भी पढ़ते हैं, मुर्दे के कारोबार।
और वह जो मर गया है सो है वह भी आदमी।
आशराफ और कसीने से ले शाह ता वजीर।
हैं आदमी ही साहिबे इज्जत भी और हकीर
यां आदमी मुरीद है और आदमी ही पीर।
अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ 'नजीर'।।
और सब में जो बुरा है सो है वह भी आदमी।।

जर

दुनियां में कौन है जो नहीं मुब्तिलाए[25] जर।
जितने है सबके दिल में भरी है हवाए जर।।
आंखों में, दिल में, जान में सीने में जाये[26] जर।
हमको भी कुछ तलाश नहीं अब सिवाए जर।।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर।।

यह पानी जो अब जीस्त[27] की सबकी निशानी है।
जर की झमक को देख के अब यह भी पानी है।
यारो हमारी जिसके सबब जिन्दिगानी है।
यह पानी यह नहीं, वह सोने का पानी है।।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर।।

आबेतिला[28] की बूंद भी अब जिसके हाथ है।
वह बूंद क्या है चश्मए आबे हयात[29] है।
दुनियां में ऐश, दीन भी इश्रत के साथ है।
जर वह है जिससे दोनों जहां से निजात है।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर।।

कितनों के दिल में धुन है कि जर ही कमाइये।
कुछ खाइए, खिलाइए और कुछ बनाइए।।
कहता है कोई हाय कहां जर को पाइए।
क्या कीजिए जहर खाइए और मर ही जाइए।।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर।।

25. ग्रस्त फंसा हुआ 26. स्थान 27. जीवन 28. सोना का पानी 29. अमृत 30. चांद की प्रभा को मंद कर देने वाले मुखवाला

लड़का सलाम करता है झुक-झुक के रश्के[30] माह।
बूढे बड़े सब उसकी तरफ प्यार करके वाह।।
देते है यह दुआ उसे तब दिल से ख्वाहमख्वाह।
"ऐ मेरे लाल हो तेरा सोने के सेहरे ब्याह"
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर

जितनी जहां में खल्क है क्या शाह क्या वजीर।
पीरो, मुरीद, मुफ्लिसो, मोहताज और फकीर।।
सब हैंगे जर के जाल में जी जान से असीर।
क्या-क्या कहूं मै खूबियां जर की मियां 'नजीर'।।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर एक यही पुकारे है, दिन रात हाये जर

मुफ्लिसी

जब आदमी के हाल पे आती है मुफ्लिसी।
किस तरह से उसको सताती है मुफ्लिसी।।
प्यासा तमाम रोज बिठाती है मुफ्लिसी।
भूका तमाम रात सुलाती है मुफ्लिसी
यह दुख वह जाने जिस पे कि आती है मुफ्लिसी।

जो अहले फज्ल आलिमो फाजिल कहाते है।
मुफ्लिस हुए तो कल्मा तक भूल जाते हैं।।
पूछे कोई 'अलिफ' तो उसे 'बै' बताते है।
वह जो गरीब गुरबां के लड़के पढ़ाते हैं।।
उनकी तो उम्रभर नहीं जाती है मुफ्लिसी।।

मुफ्लिस करे जो आन के महफिल के बीच हाल।
सब जानें रोटियों का यह डाला है इसने जाल।।
गिर-गिर पड़े तो कोई न लेवे उसे संभाल।
मुफ्लिस में होवें लाख अगर इल्म और कमाल।।
सब खाक बीच आके मिलाती है मुफ्लिसी।

बेटे का ब्याह हो तो बराती न साथी है।
न रोशनी न बाजे की आवाज आती है।।
मां पीछे एक मैली चदर ओढ़े जाती है।
बेटा बना है दूल्हा, तो बाबा बराती है।।
मुफ्लिस की यह बरात चढ़ाती है मुफ्लिसी।

मुफ्लिस का दर्द दिल में कोई ठानता नहीं।
मुफ्लिस की बात को भी कोई मानता नहीं।।
जात और हसब नसब को कोई जानता नहीं।
सूरत भी उसकी फिर कोई पहचानता नहीं।।
यां तक नजर से उसको गिराती है मुफ्लिसी।।

दुनिया में लेके शाह से, ऐ यारो ता फकीर।
खालिक न मुफ्लिसी में किसी को करे असीर।
अशराफ[31] को बनाती है एक आन में हकीर[32]।
क्या-क्या में मुफ्लिसी की खराबी कहूं 'नजीर'।।
वह जाने जिसके दिल को जलाती है मुफ्लिसी।।

बचपन

क्या दिन थे यारो वह भी थे जबकि भोले भाले।
निकले थी दाई लेकर फिरते कभी ददा ले।
चोटी कोई रखा ले बद्घी कोई पिन्हा ले।
हंसली गले में डाले मिन्नत कोई बढ़ा ले।
मोटें हों या कि दुबले, गोरे हों या कि काले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।।

जो कोई चीज देवे नित हाथ ओटते हैं।
गुड, बेर, मूली, गाजर, ले मुंह में घोटते हैं।।
बाबा की मूंछ मां की चोटी खसोटते हैं।
गर्दों में अट रहे हैं, खाकों में लोटते हैं।

31. शरीफ लोग 32. तुच्छ छोटा



कुछ मिल गया सो पी लें, कुछ बन गया सो खालें
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।।

जो उनको दो सो खालें, फीका हो या सलोना।
है बादशाह से बेहतर जब मिल गया खिलौना।।
जिस जा पे नींद आई फिर वां ही उनको सोना।
परवा न कुछ पलंग की ने चाहिए बिछौना।।
भोंपू कोई बाज ले, फिरकी कोई फिरा ले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।।

ये बालेपन का यारो, आलम अजब बना है।
यह उम्र वो है इसमें जो है सो बादशाह है।।
और सच अगर ये पूछो तो बादशाह भी क्या है।
अब तो 'नजीर' मेरी सबको यही दुआ है।।
जीते रहे सभी वे आसो-मुराद वाले।
क्या ऐश लूटते हैं, मासूम भोले भाले।।

बुढ़ापा

क्या कहर[33] है यारो जिसे अजाए बुढ़ापा।
और ऐश जवानी के तई खाए बुढ़ापा।।
इश्रत[34] को मिला खाक में गम लाए बुढ़ापा।
हर काम को हर बात को तरसाए बुढ़ापा।
सब चीज को होता है। बुरा हाय! बुढ़ापा।
आशिक को तो अल्लाह! न दिखलाए बुढ़ापा।।



33. दैवी प्रकोप 34. खुशी, आनंद

क्या यारो, उलट हाय गया हमसे जमाना।
जो शोख[35] कि थे अपनी निगाहों के निशाना।।
छेडे है कोई डाल के दादा का बहाना।
हंस कर कोई कहता है, 'कहां जाते हो नाना'।।
सब चीज को होता है। बुरा हाय! बुढ़ापा।
आशिक को तो अल्लाह! न दिखलाए बुढ़ापा।।

क्या यारो कहें गोकि[36] बुढ़ापा है हमारा।
पर बूढ़े कहाने का नहीं तो भी सहारा।।
जब बूढ़ा हमें कहके जहां[37] हाय! पुकारा।
काफिर[38] ने कलेजे में गोया तीर सा मारा।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बुढ़ापा
आशिक को तो अल्लाह! न दिखाए बुढ़ापा।।

कहता है कोई छीन लो इस बुडढ़े की लाठी।
कहता है कोई शोख कि हां खींच लो दाढ़ी।।
इतनी किसी काफिर को समझ अब नहीं आती।
क्या बूढ़े जो होते हैं तो क्या उनके नही जी।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बुढ़ापा
आशिक को तो अल्लाह! न दिखाए बुढ़ापा।।

नकलें कोई इन पोपले होठों की बनावे।
चलकर कोई कुबड़े की तरह कद को झुकावे।।
दाढ़ी के कने[39] उंगली को ला ला के नचावे।
यह ख्वारी तो अल्लाह! किसी को न दिखावे।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बुढ़ापा
आशिक को तो अल्लाह! न दिखाए बुढ़ापा।।

गर हिर्स[40] से दाढ़ी को खिजाब अपनी लगावे।
झुर्री जो पड़ी मुंह पे उन्हें कैसे मिटावें।।

---

37. संसार 38. ईश्वर की दी हुई नेमतों पर कृतज्ञता प्रकट न करने वाला, दुष्ट
39. पास 40. लोभ, लालच, इच्छा

गो मक्र[41] से हंसने के तई दांत बंधावे[42]।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बढ़ाया
आशिक को तो अल्लाह न दिखाए बुढ़ापा।।

वह जोश नहीं जिसके कोई खौफ से दहले।
वह जोम नहीं जिससे कोई बात को सह ले।।
जब फूस हुए हाथ थके पांव भी पहले।
फिर जिसके जो कुछ शौक में आवे वही कह ले।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बढ़ाया
आशिक को तो अल्लाह न दिखाए बुढ़ापा।।

करते थे जवानी में तो सब आपसे आ चाह।
और हुस्न दिखाते थे वह सब आन के दिल ख्वाह[43]।।
यह कहर बुढ़ापे ने किया आह 'नजीर' आह।
अब कोई नहीं पूछता अल्लाह! ही अल्लाह! ।।
सब चीज को होता है बुरा हाय! बुढ़ापा
आशिक को तो अल्लाह! न दिखाए बुढ़ापा।।

खेल-तमाशे

कबूतरबाजी

हैं आलमें बाजी[44] में जो मुम्ताज[45] कबूतर।
और शौक के ताइर[46] से हैं अम्बाज[47] कबूतर।
भाते हैं बहुत हमको यह तन्नाज[48] कबूतर।
मुद्दत से जो समझें हमें हमराफ[49] कबूतर।
फिर हमसे भला क्योंकि रहें बाज कबूतर।।

हैं बसरई और काबुली शीराजी निसावर।
चोया चंदनों सब्जमुक्खी शस्तरो अक्कर।

---

35. चंचल 36. यद्यपि 37. संसार 38. ईश्वर की दी हुई नेमतों पर कृतज्ञता प्रकट न करने वाला, दुष्ट 39. पास 40. लोभ, लालच, इच्छा 41. बालों का काला करने की दवा 42. धोखा, चालाकी 43. मनमोहक 44. खेल तमाशा 45. खास 46. उड़ने वाला पक्षी 47. मिले हुए 48. इठलाकर चलने वाले 49. मित्र, दोस्त



ताऊसियो, कुल पोटिये, नीले, गुली थय्यड़।
तारों के वह अंदाज नहीं बामें फलक पर।
जो करते है छतरी के ऊपर नाज कबूतर।।

'कू' करके जिधर के तईं छीपी को हिलावें।
कुछ होवे गरज फिर वह उसी सिम्त को जावे।
कुट्टी को न फकावें तो फिर तह को न आवें।
छोड़ उनको 'नजीर' अपना दिल अब किससे लगावें।
अपने तो लड़कपन से है दमसाज कबूतर।।

गिलहरी का बच्चा

लिए फिरता है, यूं तो हर बशर[50] बच्चा गिलहरी का।
हर एक उस्ताद के रहता है बच्चा गिलहरी का।
वे लेकिन है हमारा इस कदर बच्चा गिलहरी का।
दिखा दें हम किसी लड़के को, गर बच्चा गिलहरी का।
तो दम में लोट जाए देख कर बच्चा गिलहरी का।

सफेदी में वह काली धारियां ऐसी रही हैं बन।

50. मनुष्य



कि जैसे गाल पर लड़कों को छूटे जुल्फ की नागिन।
किनारीदार पट्टा, जिसमें घुंघरु कर रहे छन-छन।
गले में हंसली, पावों में कड़, और नाक मे लटकन।
रहा है सरबसर[51] गहने में भर, बच्चा गिलहरी का

पड़ी उल्फत है, जबसे ऐ 'नजीर' इस शोख बच्चे की।
उड़ाई तब से सैरें हमने क्या-क्या, कुछ तमाशे की।
न ख्वाहिश लाल की है, अब न पिदड़ी की, न पिद्दे की।
न उल्फत कुछ कबूतर की, न तोते की, न बगले की।
हमें काफी है अब तो उम्र भर बच्चा गिलहरी का।

51. नितांत, बिल्कुल



बरसात की उमस

क्या अब्र की गर्मी में घड़ी पहर है उमस।
गर्मी के बढ़ाने की अजब लहर है उमस।
पानी से पसीनों की बड़ी नहर है उमस।
हर बाग में हर दश्त[52] में हर शहर है उमस।

52. जंगल

बरसात के मौसम में निपट जहर है उमस।
सब चीज तो अच्छी है पर एक कहर[53] है उमस।

कितने तो इस उमस के तई कहते है गरमाव।
यानी कि घिर अब्र[54] हो और आके रुके बाव[55]।
उस वक्त तो पड़ता है गजब जान में घबराव।
दिल सीने में बेकल हो यही कहता है खा ताव।
बरसात के मौसम में निपट जहर है उमस।
सब चीज तो अच्छी है पर एक कहर है उमस।।

बदली के जो घिर आने से होती है हवा बंद।
फिर बंद सी गर्मी वह गजब पड़ती है यकचंद[56]।
पंखे कोई पकड़े, कोई खोले हे खड़ा बंद।
दम रुक के घुला जाता है गर्मी से हर एक बंद।
बरसात के मौसम में निपट जहर है उमस।
सब चीज तो अच्छी है पर एक कहर है उमस।।

ईधर तो पसीनों से पड़ी भीगें हैं खाटें।
गर्मी से उधर मैल की कुछ च्यूंटियां काटें।
कपड़ा जो पहनिए तो पसीने उसे आटें।
नंगा जो बदन रखिए तो फिर मक्खियां चाटें।
बरसात के मौसम में निपट जहर है उमस।
सब चीज तो अच्छी है पर एक कहर है उमस।।

53. अजाब, दैवी आपत्ति 54. बादल 55. वायु, हवा 56. थोड़ा, किंचित्



तिल के लड्डू

जाड़े में फिर खुदा ने खिलवाए तिल के लड्डू।
हर एक खोंमचे में दिखलाए तिल के लड्डू।
कूचे गली में हर जा, बिकवाए तिल के लड्डू।
हमको भी हैंगे दिल से, खुश आए तिल के लड्डू।
जीते रहे तो यारो, फिर खाए तिल के लड्डू।

जब उस सनम के मुझको जाड़े पे ध्यान आया।
सब सौदा थोड़ा थोड़ा बाजार से मंगाया।
आगे जो लाके रक्खा कुछ उसको खुश न आया।
चीजें तो वह बहुत थीं, पर उसने कुछ न खाया
जब खुश हुआ वह उसने जब पाए तिल के लड्डू।

जाड़े में जिसको हर दम पेशाब है सताता।
उट्ठे तो जाड़ा लिपटे नहीं पेशाब निकला जाता।
उनकी दवा भी कोई, पूछो हकीम से जा।

बतलाए कितने नुस्खे, पर एक बन न आया।
आखिर इलाज उसका ठहराए तिल के लड्डू।

जाड़े में अब जो यारो यह तिल गए हैं भूने।
महबूबों के भी तिल से इनके मजे हैं दूने।
दिल ले लिया हमारा, तिल शकरियों की रु ने।
यह भी 'नजीर' लड्डू ऐसे बनाए तूने।
सुन-सुन के जिसकी लज्जत, घबराए तिल के लड्डू।

आगरे की ककड़ी

पहुंचे न इसको हरगिज काबुल दरे की ककड़ी।
ने पूरब और न पश्चिम, खूबी भरे की ककड़ी।
ने चीन के परे की और ने बरे की ककड़ी।
दक्खिन की और न हरगिज, उससे परे की ककड़ी।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।

क्या प्यारी-प्यारी मीठी और पतली पतलियां हैं।
गन्ने की पोरियां हैं, रेशम की तकलियां हैं।
फरहाद की निगाहें, शीरीं की हसलियां हैं।
मजनूं की सर्द आहें, लैला की उंगलियां हैं।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।

छूने में बर्गे गुल हैं, खाने में कुरकुरी है।
गर्मी के मारने को एक तीर की सरी है।
आंखों में सुख कलेजे, ठंडक हरी भरी है।
ककड़ी न कहिए इसको, ककड़ी नहीं परी है।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।

बेल उसकी ऐसी नाजुक, जूं जुल्फ पेच खाई।
बीज ऐसे छोटे, छोटे, खशखाश या कि राई।



देख उसकी ऐसी नरमी बारीकी और गुलाई।
आती है याद हमको महबूब की कलाई।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।

लेते हैं मोल इसको गुल की तरह से खिल के।
माशूक और आशिक खाते हैं दोनों मिलके।
आशिक तो है बुझाते शोलों को अपने दिल के।
माशूक है लगाते, माथे पै अपने छिलके।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।

जो एक बार यारो, इस जा की खाये ककड़ी।
फिर जा कहीं की उसको हरगिज न भाए ककड़ी।
दिल तो 'नजीर' गश है यानी मंगाए ककड़ी।
ककड़ी है या कयामत, क्या कहिए हाय ककड़ी।
क्या खूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कंदरे की ककड़ी।